Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 4 | ISSUE : 4 | APRIL 2018

नारियों की स्थिति एवं अधिकार : मौर्य काल के विशेष संदर्भ में

डॉ संतोष कुमारी [1]

[1] **व्याख्याता (पे. बैन्ड IV), इतिहास, श्री.बी.आर मिर्धा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नागौर, राजस्थान।**

ABSTRACT

भारतीय चिन्तन परम्परा का विकास एक मार्गी नहीं है। इसके विकास में परस्पर दो विरोधी चिन्तन परम्पराएँ समानान्तर रूप से एक साथ मौजूद रही हैं। इन चिन्तन धाराओं को इतिहास ने प्राचीन से वर्तमान तक सुदृढ़ प्रभावित किया है। प्राचीन भारत का अवलोकन करने पर परस्पर दो विरोधी चिन्तन परम्पराएँ अपने प्रभाव के साथ दिखाई पड़ती है। पहली परम्परा ब्राह्मण परम्परा जो सामान्य रूप से प्रवृत्ति मार्गी अनुष्ठान मूलक और कर्मकाण्ड पोषित आस्तिक परम्परा है। वहीं श्रमण परम्परा कर्मकाण्ड और अनुष्ठान विरोधी निर्वित मार्गी नास्तिक परम्परा है। जाहिर है आस्था और दर्शन के दो ध्रुवों से विकसित होने वाली इन परम्पराओं के मध्य वैचारिक संघर्ष निरन्तर चलता रहा। मातृ सत्तात्मक समाज में जहाँ उत्पादन निजी सम्पत्ति के रूप में न होकर सामूहिक सम्पत्ति थी वही पितृ सत्ता ने निजी सम्पत्ति और अधिकार के वर्चस्ववादी धारणा को बल देते हुए ऐसे समाज का विकास किया जो वर्गों में बटाँ हुआ है। उस समय में नारी ने अपने स्वत्व की रक्षा के लिए संघर्ष भी किया, कुछ स्थानों पर साम्य संघ की पुरानी रुढ़ियों ने जीवित रहने की कोशिश की। पर दासों के स्वामी पुरुष ने उन सबको निर्दयता और कठोर हिंसा से दुबारा दबा दिया। मौर्य कालीन स्त्रियों पर नियम और प्रतिबन्ध ठोके गये थे। रुढिवादी सामाजिक और धार्मिक विचार वाले लोग स्त्रियों को एक दासता जीवन प्रदान किये थे। यूनानी लेखकों के अनुसार स्त्रियों खुले वातावरण में सांस नही ले सकती थी। वे अपना जीवन स्वेच्छा से नहीं जी सकती थी। उनका मोल लगता था वे बाजार में खरीदी और बेची जाती थी जब ये युवा होती थीं तो उन्हें बड़े-बड़े रईस लोग खरीदते थे। वे राजाओं के यहाँ नौकरानिया होती थी। गुलामों की तरह रहती थी। इससे यही प्रतीत होता है कि स्त्रियों की दशा उस समय शोचनीय थी।

Keywords: नारी , समाज, व्यवस्था, अधिकार, स्वतंत्रता, जीवन, मौर्य काल, सीमा, धर्म, संस्कृति, शिक्षा.

मौर्य काल में सामाजिक परम्परा ब्राह्मणीय व्यवस्था पर ही आधारित थी। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के कर्तव्यों एवं अधिकारों की व्याख्या करता है।

मौर्य काल में नारी की स्थिति सम्मानीय एवं श्रेष्ठ थी। वे नारियों का सम्मान करते थे साहित्यकारों के अनुसार वह समाज जहाँ नारी को आदर एवं सम्मान प्राप्त है, जहाँ नारी सुरिक्षत एवं निर्भिक अनुभव करती है, जहाँ उसकी मर्यादा और अस्मिता सर्वोपरि है। साम्राज्यवाद का प्रथम प्रयोग मौर्य युग में किया गया था। यद्यपि इस साम्राज्यवाद का आधार सामन्तवादी और पुरोहितवार था। इस व्यवस्था में 'नारी' को आदर एवं सम्मान की स्थिति प्रदान की गयी है।

मौर्य काल में स्त्री का विशेष सम्मान दिखायी देता है और वह धार्मिक कार्यों में सम्मिलित होती थी। राज्य कन्याओं को राजनीतिक एवं धार्मिक शिक्षा दी जाती थी तृतीय एवं चतुर्थ शताब्दी ई० पू० तक सामान्यतः परिवार में ही बालिकाओं को शिक्षा दी जाती थी तथा उनका उपनयन संस्कार भी होता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य कन्याओं को वैदिक एवं साहित्य शिक्षा दी जाती थी। इस युग में जीवन का लक्ष्य शिक्षा का भी था। इस काल में सभी पुरुष अपना बौद्धिक क्षमता को बढ़ाने में लगे रहते थे।

मौर्य काल पर श्रमण परम्परा का यथेष्ट प्रभाव था। ब्राह्मण-परम्परा और श्रमण परम्परा के बीच अन्तर्विरोध था। ब्राह्मण परम्परा सामाजिक व्यवस्था की धुरी गृहस्थ आश्रम और गृहस्थ आश्रम की धुरी नारी को मानती थी जबकि श्रमण परम्परा ने समस्त जीवन को प्राथमिकता दी और गृहस्थ जीवन को हतोत्साहित किया। भ्रमण चिन्तन परम्परा ब्राह्मणीय व्यवस्था के विपरीत एक चुनौती थी. अतः ब्राह्मण व्यवस्था ने उस चुनौती के समक्ष समायोजन का प्रभाव किया। इसी प्रभाव के परिणामस्वरुप मौर्य काल में नारियों के संदर्भ में ब्राह्मण धर्मशास्त्रोंकारों द्वारा अनेक नियंत्रणात्मक विधि-विधान द्वारा प्रतिपादित किये गये।

मौर्यकाल श्रमण परम्परा एवं चिन्तन परम्परा के अन्तर द्वंद से जो सामाजिक संरचना उभरकर सामने आती है। इसके अन्तगर्त स्त्री और उपेक्षितों को श्रमण परम्परा मजबूती से समाज में स्थान दिलाने में सहायक सिद्ध होती है। हालाकि इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि श्रमण परम्परा भी उदार सामाजिक व्यवस्था की प्रतिक्रिया स्वरुप, ब्राह्मण चिन्तन परम्परा ने सामाजिक नियमों को जटिल से जटिलतम बनाने का भरसक प्रयास किया। एक तरफ पितृ सत्ता का सामाजिक और राजनैतिक ढाँचा स्त्रियों और उपेक्षितों के अधिकारों को लगभग समाप्त करने के लिए अनेक नियम कायदे बनाये। तथापि मौर्य काल स्त्रियों की दशा पूर्व से बैहतर होती चली गई।

पुत्री या कन्या रूप नारी जीवन की एक महत्वपूर्ण अवस्था है। समाज में नारी की जो समाजिक स्थिति है उसमें पुत्री वर्ग सबसे अधिक प्रभावित रहता है। अतः कन्या या पुत्री के जन्म पर होने वाली समाजिक प्रतिक्रिया मात्र ही सम्पूर्ण नारी जीवन पर प्रर्याप्त प्रकाश डालती है। अतः किसी-काल विशेष के नारी-जीवन के अध्ययन के लिए पुत्री या कन्या के जीवन का अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

कन्या के प्रति प्रेम आदर भाव के बावजूद पुत्र की अपेक्षा कन्या की उपेक्षा होती थी। वाल्मिकी के अनुसार कन्या का पिता होना किसी भी व्यक्ति के लिए दुःख का कारण है[1]।

गोभिल गृह्य सूत्र में स्त्री के लिए वेदाध्ययन का विधान है और उसके लिए 'यज्ञोपवीतनी शब्द का प्रयोग हुआ हैं। प्रत्येक समाज में नारी जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुष के नियंत्रण में रहती है। कन्या पत्नी और माता जैसी स्थितियों में वह कम पिता पिता व पुत्र द्वारा रक्षित मानी गयी है[2]।

पी० वी० काणे के अनुसार-

कुछ सूत्रो में नामकरण के उपरान्त पिता द्वारा पुत्र का माथा सूंघने तथा मन्त्रोच्चारण करने का उल्लेख है। जबकि कन्या के लिए यह नही होता था। उसके लिये केवल गम में ही कुछ कहना होता था। इससे स्पष्ट है कि पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्व दिया गया है। यद्यपि पुत्र को बिल्कुल अनादर नहीं प्रदान किया जाता था[3]।

महाकाव्यों के समाज में पुत्री को भी माता-पिता का स्नेह उसी प्रकार प्राप्त था। जैसे -पुत्र को। साथ ही साथ इस समय पुत्री का जन्म एक चिन्ता का विषय बन चुका था। इसे चिन्ता का कारण पुत्री उत्पन्न होने वाली समस्याएँ प्रतीत होती है। इनमें सबसे बड़ी समस्या कन्याओं की रक्षा तथा उनके विवाह की थी। क्योंकि विवाह के अवसर पर कन्या का मातृकुल, पितृकुल तथा पतिकुल तीनों ही संशयपन्न हो जाते है[4]।

उपर्युक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि पुत्र जन्म की अपेक्षा पुत्री जन्म अप्रियता केवल समाजिक एवं आर्थिक कारणों से थी, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्राचीन भारत में पुत्री के संरक्षण उनके साथ दुर्व्यवहार या अत्याचार करते थे अथवा उन्हें मार डालते है।

रामायण और महाभारत में आदर्श पत्नी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। किन्तु मेगस्थनीज[5] और मनु[6] के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि सभी स्त्रियाँ पूर्णतया पतिव्रता नहीं थी। जातको में भी ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है जिनसे प्रकट होता है। कि समाज मे ऐसे परिवार थे जिनमे विवाहित स्त्रियों मे आदर्ष स्वामिभक्ति का अभाव था।

मेगस्थनीज के अनुसार अनेक व्यक्ति एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करते थे। कुछ स्त्रियों से तो वे इसलिए विवाह करते थे कि वे उनकी सहायता कर सके और कुछ से संतानोत्पति और भोग-विलास के लिए[7]।

मनु के अनुसार एक-दूसरे के प्रति आजीवन भक्ति पति और पत्नी का सर्वोच्च धर्म है। उनके विचार समान हो, इसके लिए उन्हे सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए[8]। महाभारत में भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये है। महाभारत मे भी परिवार मे भी पत्नी की स्थिति बहुत ऊँची दिखाई गई है। उसमें लिखा है कि जिस स्त्री का हाथ विवाह मे स्वीकार किया जाय उसके साथ सदा दयालुता का व्यवहार करना चाहिए और जो उसे प्रिय हो वह उसे देना चाहिए। उसके सास, ससुर और जेठ को भी उससे प्रेम करना चाहिए। क्योकि वह संतान को जन्म देती है, जिस पर समाज का कल्याण निर्भर है।

पत्नी पति की अर्धांगिनी है। उसकी सच्ची मित्र है। वह धर्म, अर्थ, और काम की स्रोत है और पति मोक्ष की प्राप्ति भी उसी के द्वारा कर सकता है। किसी भी व्यक्ति को क्रोध में पत्नी की इच्छा के विरूद्ध कुछ भी नहीं करना चाहिए क्योंकि परिवार का सुख, हर्ष और प्रषंसा उसी पर निर्भर हैं।

वैदिक युग में पत्नी सर्वोत्कृष्ट व घर की रानी थी। यज्ञ में वह पति के साथ रहती थी।

नारी का पत्नी का सम्मान युक्त पद विवाह संस्कार के बाद प्राप्त होता था। पति-पत्नी में केवल एक दूसरे के प्रति वरन् एक लोकोत्तर देवी शक्ति के प्रति भी प्रतिबद्ध रहते थे[9]।

पुरूष व नारी के कार्य क्षेत्र में कुछ भिन्नता होते हुए भी एक के कार्य में दूसरे की सहायता की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है। गृहिणी को ही गृह कहा गया है।' तत्कालीन समाज में दाम्पत्य प्रेम को आदर्ष रूप में देखा जाता था। स्त्री-पुरूष की शरीरार्द्ध और अर्द्धांगिनी थी तथा श्री और लक्ष्मी के रूप में वह मनुष्य के जीवन को सुख और समृद्धि से दीप्त करने वाली कही गयी है[10]।

नारी कुटुम्ब में पत्नी के रूप में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यद्यपि पति कुल में नारी को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। फिर भी उस पर कठोर नियन्त्रण भी लगाये जाते थे। पत्नी को पति के अवगुणो को ध्यान न देते हुए उसकी निस्वार्थ सेवा करने के निर्देष दिये गये है। जबकि पुरुष को दुष्टा पत्नी के त्याग का अधिकार प्राप्त था। पत्नी पर पूर्ण रूप से पति का अधिकार था। मनु के अनुसार युवावस्था में नारी को अपने पति के अधीन रहना चाहिए[11]। अभिलेखों में भी पतिव्रता शब्द कही-कही प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द पतिव्रता स्त्रियों के सम्मान का सूचक हैं।

मातृ रूप में नारी सर्वथा पूज्यनीय रही है। रामायण में भी कहा गया है कि निःसंतान होने का दुःख नारी को निरन्तर सताता रहता है। वे मातृत्व प्राप्ति के लिए उत्सुक रहती थी। पार्वती के पुत्र की अभिलाषा से शिव से संयुक्त होने में देवताओ द्वारा विघ्न डालने पर पार्वती ने उन्हें शाप दे दिया था।

महाभारत में माता को मनुष्य की जन्मदात्री, पालन-पोषण करने वाली स्नेह की मूर्ति होने के कारण सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। शरीरोत्पत्ति में माता ही प्रधान है। और मनुष्य की शरीर रूपी अग्नि को प्रकट करने में माता ही अग्रणी है। साहित्यिक साक्ष्यों में अनेक स्थलो पर माता-पिता की तुलना करते हुए कही माता को पिता से श्रेष्ठ माना गया है। माता संतान को गर्भ में धारण करने के कारण धात्री जन्म देने के कारण जननी तथा सेवा शुश्रुषा करने के कारण शुश्रु कहलाती थी। मनु ने भी माता को पृथ्वी मूर्ति कहा है। वसिष्ठ के अनुसार पतित होने पर पिता त्याज्य हैं। परमात्मा नहीं[12]।

पुत्रवती नारियों का समाज में विशेष आदर था। जो स्त्रियाँ पुत्रवती नही होती थी उसके पति घरो में निरादर का व्यवहार किया जाता था। आज भी यह स्थिति किसी न किसी सीमा तक समाज में व्याप्त है। पर स्त्री को पुत्र उत्पन्न हो जाता है तो सभी लोग आदर पूर्वक देखने लगते है। इसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण किश गौतमी है[13]।

'नारी पथ प्रदशिका है। नारी पुरूष को सर्वप्रथम महत्वाकांक्षा की ओर प्रेरित किया। क्योकि महत्वकांक्षा विहिन नर त्याग और बलिदान के = योग्य नहीं होता। साथ ही साहस एवं शौर्य से रहित पुरूष उन्नति के कंटकित मार्ग का पथिक भी नही हो पाता। महत्वकांक्षा का दुर्गम स्वर्ग उसके लिए स्वप्न होता है। अतएव नारी ने पुरूष उन्नति के कंटकित मार्ग का पथिक भी नही हो पाता। महत्वकांक्षा का दुर्गम की इस कायरता एवं प्रमोद को अपनी उत्तेजक वाणी के द्वारा झक-झोरा भी हैं। देश के मान-मर्यादा एवं बलिदान के लिए नारी ने पुरूष के प्रसुप्त क्षेत्रित्व को जागृत किया। वह अपनी तलवार से प्रलय की ज्वाला फैला दें। और शृंगीनार की प्रवल हुंकार से शत्रु के मानस दुर्ग को विकसित कर दे। देश प्रेम प्रधान प्रेरणा देने के लिए नारी अतित के गौरव का स्मरण कराती है। अपने पूर्वजों की शक्ति और साहस भरी कहानी कहकर ही वह प्रसुप्त हृदय को जागरण का संदेश देती है।

नारी अपने वाणी के प्रभाव से, कार्यों में त्याग प्रतिशोध मे वह शक्ति है कि वह पुरुष में बड़ा से बड़ा परिवर्तन ला सकती है। नारी ने वाणी के प्रभाव से पुरूष के समाजिक संरचना के लिए अनेक कार्य कराये है। इसलिए नारी को समाज निर्मात्री कहा जाता है। नारी में श्रद्धा, विश्वास, मर्यादा और निर्धारित नियमो को आचरित करने के दृढ़ भाव है। समाज के निर्माण इन्ही विचारो से प्रभावित होकर नारी के योगदान की प्राचीन स्मृतिकारो ने भूरी-भूरी प्रशंसा की है। महाकवि कालीदास को सपपथ का निर्देश एवं काव्य रचना की ओर उनकी पत्नी विधोत्तमा ने ही प्रेरणा प्रदान की थी। नारी ने ही उनके पथ को अवलोकित कर संसार के उच्चकोटि के महाकवियो में सर्वोच्च स्थान दिलाया है।

शिक्षा के क्षेत्र में नारीयों का सदा से बहुत योगदान रहा वे शिक्षिका का कार्य करती थी। उनमे प्रायः दर्शन की आध्यापिका होती थी, क्योकि मैत्रिय, गार्गी आदि नारियाँ अपनी दार्शनिक विचारधारा के लिए सभी युगो विश्रुत रही है। चिकित्सा के क्षेत्र में भी बहुत सी नारीयों ने ग्रन्थ लिखा है इस सम्बन्ध में रूसा का नाम उल्लेखनीय है।

संगीत के साथ ही दूसरा कियाकलाप नृत्य था। पुरूष और स्त्रियाँ दोनो नृत्य करते थे। विशेष रूप से स्त्रियाँ नृत्य करती थी। ये नारीयाँ विभिन्न सामाजिक उत्सवो पर आमंत्रित की जाती थी। व्यापार और व्यवसाय में भी प्राचीन काल से नारीयों का बड़ा योगदान रहा है[14]।

प्रशासनिक क्षेत्र में स्त्रियों के अधिकार के सम्बन्ध में दो मत प्रस्तुत किये गये है एक पत्त इस मत का समर्थन करता है। दुसरा नहीं। इसलिए रामायण में यह प्रस्ताव किया गया कि राम को वनवास दिया जाता है तो सीता को ही साम्राज्य का भार सौपना चाहिए। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य एवं इतिहास अध्ययन करे तो यह ज्ञात होता है कि नारीयों को शासन करने, संरक्षिक बनने, युद्ध क्षेत्र में भाग लेने, राजनीतिक कार्यों में मंत्रणा करने का अधिकार था[15]।

प्राचीन भारत में स्त्रियो के साम्पत्तिक अधिकारो के विषय में गम्भीरता पूर्वक विचार किया गया है और आलोच्यकाल मे कन्याओ को सम्पत्ति का अधिकारी माना गया परन्तु यह अधिकार पुत्री की उसी परिस्थिति मे दिया जाता था, जबकि पुत्र न हो और प्रर्याप्त सीमा तक इस विषयक अधिकार जिसमें साम्पत्तिक अधिकार भी सम्मिलित है जो अत्यन्त सीमित रहे है[16]।

मनु के अनुसार पत्नी की अपनी निजी कोई सम्पत्ति नहीं होती। उसकी समस्त सम्पत्ति उसके पति की होती है[17]।

मौर्य काल में नियोग की प्रथा विद्यमान थी। अतः ऐसी बहुत कम विधवा होंगी जिनके पुत्र न हो अतः उन्हें स्वयं सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं होती थी। इसलिए 300 ई० पू० तक किसी भी धर्मशास्त्र में विधवा के सम्पत्ति का उल्लेख नहीं है। आपस्तम्ब बौधायन मनु के विधवा को आय का कोई भाग नहीं दिया है।

मनु के अनुसार स्त्री-धन पुत्रों और पुत्रियों दोनो को दिया जाय[18]। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे समय बीतता गया धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री-धन में स्त्री को प्राप्त होने वाली सभी धन राशियों और सम्पत्ति को सम्मिलित कर लिया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारत में स्मृतिकारों का दृष्टिकोण स्त्रियों को आर्थिक अधिकार देने के विषय में सहानुभूतिपूर्ण था।

निष्कर्ष :-

सार संक्षेपतः मौर्य युगीन भारत में धार्मिक जीवन भक्ति सम्प्रदाय का उदय हो चुका था। कुछ को देवता मानकर उनकी धातुओं एवं प्रतीकों की पूजा की जाने लगी। यूनानी लेखकों ने वासुदेव (कृष्ण) की पूजा का उल्लेख हेराक्लीज नाम से किया है। उस समय स्त्रियाँ सभी धार्मिक में भाग लेती थी।

मौर्य युग में कन्या 'शक्ति' के रूप में प्रतिष्ठित हो चुक थी। किन्तु उसकी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध होता था। कन्या को गौरी भवानी के समान सम्मान दिया जाता था। उसे लक्ष्मी भी माना जाता था। पुत्र न रहने पर उसे उत्तराधिकारी का अधिकार दिया जाता था। वह शिक्षा दिक्षा ग्रहण कर सकती थी।

REFERENCES

1. रामायण – महर्षि वाल्मीकि, 7/ 9 /10 -11

2. चंद्रगुप्त मौर्य और उसका काल - राधा कुमुद मुखर्जी, पृष्ठ- 70

3. धर्म शास्त्र का इतिहास, भाग 1, - पी.वी.काने, पृष्ठ - 200

4. रामायण – महर्षि वाल्मीकि, 7/ 9 /10

5. मैक्रिण्डिल, मेगस्थनीज पृ0 71, नंद-मौर्ययुगीन भारत के०ए० नीलकण्ड शास्त्री, पृ० 71, सं0-1969 मोतीलाल बनारसी दास।

6. नन्द मौर्य युगीन भारत के० ए० नील कण्ठ शस्त्री, पृ०-72

7. मैक्रिण्डिल, मेगस्थनीज पृ0 71,

8. धर्म शास्त्र का इतिहास, भाग 1, - पी.वी.काने, पृष्ठ – 430

9. बोधायन धर्मसूत्र – 1/ 10/ 29

10. मौर्य सम्राज्य का सांस्कृतिक इति०-प्रो० भगवती प्रसाद पांथरी, पृ०-340

11. मौर्य सम्राज्य का सांस्कृतिक इति०-प्रो० भगवती प्रसाद पांथरी, पृ०-340

12. धर्म शास्त्र का इतिहास, भाग 1, - पी.वी.काने, पृष्ठ – 334

13. थेरीगाथा - 63

14. विष्णु पुराण-6 / 31

15. मौर्य सम्राज्य का सांस्कृतिक इति०-प्रो० भगवती प्रसाद पांथरी, पृ०-315

16. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास – ओमप्रकाश, पृष्ठ - 244

17. धर्म शास्त्र का इतिहास, भाग 2, - पी.वी.काने, पृष्ठ – 943

18. मनुस्मृति – 9/192

---

1. मनुस्मृति

2. महाभारत

3. महाभाष्य

4. रामायण

5. विष्णु पुराण

6. याज्ञवलक्य स्मृतिः

7. प्राचीन भारत सामाजिक इतिहास, दिल्ली 1975

8. भारतीय इतिहास का मौर्य युग दिल्ली 1997

9. प्राचीन भारतीय संस्कृति कला राजनीतिक धर्म तथा दर्शन, इलाहाबाद, 1980ई0

10. मौर्य साम्राज्य का साहित्यिक इतिहास प्रथम